UGC NET - PSYCHOLOGY
SAMPLE THEORY
PAPER - III

- अभिप्रेरणा एवं संवेग

VPM CLASSES
For IIT-JAM, JNU, GATE, NET, NIMCET and Other Entrance Exams
1-C-8, Sheela Chowdhary Road, Talwandi, Kota (Raj.) Tel No. 0744-2429714
Web Site www.vpmclasses.com E-mail-vpmclasses@yahoo.com

अभिप्रेरणा एवं संवेग

1. अभिप्रेरणात्मक सम्प्रत्यय

मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरण के स्वरूप की व्याख्या तीन मूल तत्वों द्वारा की है– आवश्कता, प्रणोद, तथा प्रोत्साहन।इसे मनोवैज्ञानिकों ने आवश्यकता–अन्तर्नोद–प्रोत्साहन सूत्र भी कहा हैं।

मौलिक अभिप्रेरणात्मक सम्प्रत्यय

1. आवश्यकता– जब प्राणी के शरीर में किसी चीज की कमी या अति की अवस्था किसी कारण से उत्पन्न हो जाती है, तो इसे हम आवश्यकता की संज्ञा देते हैं। उड्वर्थ तथा स्कलौसवर्ग ने आवश्यकता को इसी अर्थ में परिभाषित करते हुए कहा है, ''कमी या अति की शारीरिक अवस्था को आवश्यकता कहा जाता।'' व्यक्ति को जब प्यास लगता है तो स्पष्ट है कि उसके शरीर की कोशिकाओं में पानी की कमी हो जाती है। अतः यहाँ प्यास की आवश्यकता पानी की कमी के कारण उत्पन्न हुई। इस तरह की आवश्यकता के ऊतक की संज्ञा दी जाती है। ऐसा भी होता है कि हमारे शरीर में कुछ ऐसे पदार्थ अधिक मात्रा में जमा हो जाता है कि उन्हें बाहर नहीं निकाला जाय, तो इससे प्राणी का जीवन संकट में पड़ सकता है। पेशाब, पैखाना करने की आवश्यकता कुछ ऐसे ही पदार्थो का अधिक मात्रा में एकत्रित हो जाने से होता है। इस तरह की आवश्यकता को निष्कासन आवश्यकता की संज्ञा दी जाती है। अत : आवश्यकता से तात्पर्य प्राणी (व्यक्ति या पशु) के इन दोनों तरह की अवस्थाओं अर्थात् कमी तथा अति से होता है। मनोवैज्ञानिकों ने आवश्यकता को अभिप्रेरणात्मक चक्र का पहला कदम माना है क्योंकि किसी भी अभिप्रेरण का उत्पत्ति में सबसे पहले आवश्यकता ही उत्पन्न होती हैं।

2. प्रणोद– जब प्राणी या जीव में आवश्यकता उत्पन्न होती है। तो इससे स्वभावतः उसमें क्रियाशील बढ़ जाती है और वह पहले से अधिक सक्रिय तथा तनावपूर्ण मालूम पड़ता है सार्टेन ने प्रणोद को परिभाषित करते हुए कहा है, "प्रणोद वैसे तनाव या क्रियाशीलता की अवस्था को कहा जाता हैं। जो किसी आवश्यकता (ऊतक या निष्कासन) द्वारा उत्पन्न होता है।'' जैसा कि हम जानते हैं, व्यक्ति में भूख, प्यास, काम (SEX) आदि की आवश्यकताएँ प्रमुख आवश्यकताओं में से है। अतः इन आवश्यकताओं द्वारा प्रणोद उत्पन्न होता है। भूख की आवश्यकता से भूख प्रणोद (hunger drive), प्यास की आवश्यकता से प्यास, काम आदि शारीरिक आवश्यकताओं (physiological needs) के अलावा कुछ मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ भी व्यक्ति में होते हैं। जैसे– जीवन में ऊँचा–से–ऊँचा उपलब्धि

(achievement) प्राप्त करने की आवश्यकता (need), दूसरों पर आधिपत्य जमाने की आवश्यकता (dominance) आदि। इन मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से भी मनोवैज्ञानिक प्रणोद (psychological drive) उत्पन्न होता है।

3. प्रोत्साइन या लक्ष्य (Incentive or goal)—अभिप्रेरणात्मक चक्र की तीसरा कदम प्रोत्साहन (incentive) या लक्ष्य (goal) का होता है। लक्ष्य (goal) या प्रोत्साहन वातारण का वह वस्तु है जो व्यक्ति या पशु को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है तथा जिसकी प्राप्ति से व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति तथा प्रणोद (drive) में कमी हो जाती है। जैसे—प्यासे व्यक्ति के लिए पानी लक्ष्य या प्रोत्साहन होता है जो व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है तथा जिसकी प्राप्ति से प्यास समाप्त हो जाती है तथा क्रियाशीलता और तनाव की स्थिति (प्रणोद) भी कम हो जाती है। परन्तु यदि थोड़ी देर के लिए यह मान लिया जाय कि प्यासे व्यक्ति को पानी की जगह भोजन (food) दिया जाता है, तो इससे उसकी प्यास नहीं बुझेगी और न ही प्यास प्रणोद (thirst drive) में कमी आएगी। अतः किसी वस्तु को लक्ष्य या प्रोत्साहन कहलाने के लिए यह भी आवश्यक है कि वह आवश्यकता (need) से सम्बन्धित हो।

लक्ष्य (goal) दो तरह के होते हैं— धनात्मक (positive) तथा ऋणात्मक (negative)। धनात्मक लक्ष्य (positive goal) वैसे लक्ष्य को कहा जाता है जिसे व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है क्योंकि उसे प्राप्त करने से ही उसकी आवश्यकता (need) की पूर्ति हो सकती है। भोजन, पानी, लैंगिक क्रिया (sexual activities) आदि धनात्मक लक्ष्य के उदाहरण हैं। कुछ लक्ष्य ऐसे होते है जिनसे व्यक्ति दूर रहना चाहता है क्योंकि इससे दूर रहने से ही उसकी आवश्यकता की पूर्ति होती है। जैसे— दण्ड (punishment), आँखों पर पर सीधे पड़ने वाली तीव्र रोशनी, अत्यधिक गर्मी तथा अत्यधिक ठंढ आदि कुछ ऋणात्मक लक्ष्य के उदाहरण हैं।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि आवश्यकता (need), प्रणोद (drive) तथा प्रोत्साइन (incentive) अभिप्रेरणात्मक चक्र (motivational cycle) के प्रमुख तीन क्रमिक कदम (successive steps) हैं।

अभी हाल में डेसी (Deci, 1975) ने मानव अभिप्रेरण (human motivation) को अभिप्रेरणात्मक चक्र (motivational cycle) द्वारा और अधिक स्पष्ट एवं उसकी उपयुक्त (appropriate) व्याख्या करने के लिए इस चक्र में एक चौथा तत्त्व (element) भी जोड़ा है— संज्ञान (cognition)। संज्ञान एक सामान्य मानसिक प्रक्रिया है जिसमें चिन्तन (thinking), प्रत्यक्षण (perception), स्मरण (remebering), भाव

(feeling) आदि प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। मनेाविज्ञानिकों ने इस तरह के अभिप्रेरणात्मक चक्र (motivational cycle) को संज्ञानात्मक अभिप्रेरणात्मक चक्र (cognitive motivational cycle) की संज्ञा दी है। इस चक्र के अनुसर मानव अभिप्रेरण (human motive) की व्याख्या इस प्रकार होती है। किसी बाह्य (external stimulus) या आन्तरिक उद्दीपक (internal stimulus) (वैसे उद्दीपक को आन्तरिक उद्दीपक कहा जाता है जो शरीर के भीतर होते हैं) द्वारा जब व्यक्ति उत्तेजित (stimulate) होता है तो इससे व्यक्ति में क्रियाशीलता बढ़ जाती है और उसमें किसी लक्ष्य (goal) की ओर अग्रसर होते है प्रवृत्ति उत्पन्न होत जाती है। साथ-ही-साथ, वह इस बात से भी अवगत (aware) हो जाता है कि उसे उस लक्ष्य पर पहुँचने से कितना संतोष मिलेगा। इस तरह के अनुमान को 'भावी-संतोष-से-अवगत-की स्थिति' (state-of-awarencess-of-potential satisfaction) कहा जाता है। इस स्थिति के बाद व्यक्ति यह सोचता है कि किसी तरह उस लक्ष्य (goal) पर पहुँचने के बाद उसे एक संतोष (satisfaction) होगा जिसे वास्तविक संतोष (real satisfaction) कहा जाता है। यदि वास्तवकि संतोष का स्तर 'भावी-संतोष' (potential satisfaction) के स्तर के कम हुआ, तो ऐसी परिस्थिति में अभिप्रेरण (motive) की स्थिति बनी होती है और व्यक्ति नया उपाय सोचकर वास्तविक संतुष्टि का स्तर और अधिक बढ़ाने की कोशिश करता है ताकि वह भावी संतोष (potential satisfaction) के स्तर पर पहुँच जाय। इस संज्ञानात्मक अभिप्रेरणात्मक चक्र को एक उदाहरण द्वारा हम इस प्रकार समझा सकते हैं–

2. आन्तरिक अभिप्रेरण तथा बाह्य अभिप्रेरण

आन्तरिक अभिप्रेरण से मोटे तौर पर तात्पर्य स्वतः अभिरूचि (spotaneous interest) से होता है। जब व्यक्ति किसी कार्य को इसलिए करता है क्योंकि उसमें उसकी अभिरूचि है तथा उस कार्य को करने में खुशी होती (pleasure) मिलती है, तो ऐसा कहा जाता है कि व्यक्ति में आन्तरिक अभिप्रेरण (intrinsic motivation) है। स्पष्ट है किस इस तरह का अभिप्रेरण तब कुछ वैसे कारकों (factors) पर निर्भर करता है जो व्यक्ति में पाये जाते हैं तथा जिन्हें बाहर से प्रत्यक्ष रूप से देखना सम्भव नहीं है। **डेसी** (Deci, 1975) ने आन्तरिक अभिप्रेरण को परिभाषित करते हुए कहा है, ''वातारण के साथ समायोजन (deal) करने में व्यक्ति में उत्पन्न आत्म-निर्धारी (self-determing) तथा सक्षमता की भाव की आवश्यकता को आन्तरिक अभिप्रेरण कहा जाता है।'' **रेबर** (Reber, 1982) के अनुसार, ''आन्तरिक अभिप्रेरण प्रायः कार्य को पूरा करने तथा संतोष की भाव (feeling) से न कि बाह्य पुरस्कार (external

reward) से उत्पन्न होता है।'' इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि आन्तरिक अभिप्रेरण व्यक्ति के भीतर होता है और यह किसी कार्य के करने में उत्पन्न संतोष, खुशी (pleasure) आदि से उत्पन्न होता है। मनोवैज्ञानिकों ने कई ऐसे प्रयोग (experiments) किए हैं जिनसे यह स्पष्ट हो गया है कि जब व्यक्ति में किसी कार्य को करने का आन्तरिक अभिप्रेरण (intrinsic motivation) की स्तर में कमी आ जाती है (क्योंकि व्यक्ति ऐसी परिस्थिति में पुस्तकार माने के लिए कार्य करने लगता है न कि अपनी अभिरूचि के कारण और न ही संतोष तथा प्राप्त करने के लिए)। पिटचार्ड, कैम्पबेल तथा कैम्पबेल (Pitchard, Campbeall & Campbell, 1977) ने इस तथ्य की पुष्टि अपने एक प्रयोग में किया है। इस प्रयोग में कुछ छात्रों का शतरंज के खेल में पहले से ही काफी अभिरूचि थी। अतः वे शतरंज के खेल से काफी खुश भी होते थे। इन छात्र-छात्राओं में शतरंज के सम्बन्धी गत अनुभव (past experiences) को जानने के खयाल से उन्हें एक प्रश्नावली (questionnaire) जाँचने के लिए दिया गया। इसके बाद 10 मिनट के लिए इन लोगों को कमरा में अकेले छोड़ दिया गया। मेरे में मेज पर शतरंज की गोटियाँ इस ढंग से रखी गयी थी मानो दो आदमी खेल के बीच में ही छोड़कर कहीं चले गये हों। प्रयोज्य (subject) के व्यवहार को प्रयोगकर्त्ता एक-तरफा शीशा (one-way mirror) द्वारा देख रहे थे। ऐसा देखा गया कि अधिकतर प्रयोज्य 10 मिनट के समय को शतरंज के अधूरे खेल को पूरा करने में बिताये। इसके बाद प्रयोगकर्त्ता पुनः कमरा में प्रवेश का प्रयोज्यों (subjects) को दो समूह में बाँट दिये। एक समूह को कहा गया कि शतरंज के खेल की कुछ समस्याओं का सही-सही समाधान करने पर 5 डॉलर (Dollar) (अमेरिकन रूपया) तक का ईनाम उन्हें दिया जायेगा। इस तरह से इस समूह में बाह्य अभिप्रेरण extrinsic motivation दिया गया। प्रयोज्यों के दूसरे समूह को कोई इस तरह का बाह्य अभिप्रेरण नहीं दिया गया और उन्हें शतरंज की समस्याओं का समाधान करने के लिए कहा गया। परिणाम में देखा गया कि जिस समूह को बाह्य अभिप्रेरण (extrinsic motivation) दिया गया था, उसमें आन्तरिक अभिप्रेरण का स्तर पहले से कम हो गया और प्रयोज्य डॉलर कमाने लग गया था, उसमें आन्तरिक अभिप्रेरण का स्तर पहले से कम हो गया और प्रयोज्य डॉलर कमाने के उद्देश्य से ही समस्या का समाधान करने लगे न कि अपनी स्वतः अभिरूचि (spotaneous interest) तथा संतोष और खुशी के लिए। दूसरा समूह जिसमें इस तरह का बाह्य अभिप्रेरण की घोषणा नहीं की गयी थी, के प्रयोज्यों की आन्तरिक अभिप्रेरण पहले के समान अधिक ऊँचा बना रहा तथा वे शतरंज की समस्याओं का समाधान

अपनी अभिरूचि, संतोष तथा खुशी के लिए ही अधिक किया करते थे। अतः निष्कर्ष यह है कि बाह्य अभिप्रेरण देने से आन्तरिक अभिप्रेरण में कभी आ जाती ळें

3. गुणारोपण

गुणारोपण के अर्थ एवं विशेषताएँ :

गुणारोपण एक काफी महत्वपूर्ण संज्ञानात्मक प्रक्रिया है। जब भी कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के व्यवहारों का प्रत्यक्षण करता है तो उस समय वह मात्र इतनी ही जानकारी से संतुष्ट नहीं हो जाता है कि उसने अमुक व्यवहार किया है बल्कि वह उन व्यवहार के कारणों अथवा उनकी उत्पत्ति के स्त्रोतों या प्रेरकों का भी अनुमान कर लेता है। किसी व्यक्ति और उसके कार्यो एवं व्यवहारों को प्रत्यक्षण करते समय इस प्रकार का अनुमान कर लेना ही गुणारोपण कहलाता है। फेल्डमैन के शब्दों में इसे इस प्रकार परिभाषित किया जाता है, ''दूसरे लोगों के व्यवहार के कारणों को समझाना तथा उसके बारे में निर्णय लेना ही गुणारोपण कहा जाता है।'' बेरोन तथा बर्न के अनुसार, ''गुणारोपण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम लोग दूसरों के व्यवहारों के कारणों का निर्धारण करते है तथा उनके स्थायी शीलगुणों एवं चित्त–वृत्ति के बारे में ज्ञान प्राप्त करते है।''

फेल्डमैन तथा बेरोन एवं बर्न द्वारा दिये गये इन सरल परिभाषाओं से गुणारोपण की प्रक्रिया के बारे में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य हमें मिलते हे जो इस प्रकार है –

1. गुणारोपण की प्रक्रिया एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है जिसके द्वारा दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों के कारण का पता चलता है।
2. गुणारोपण की प्रक्रियाय व्यक्ति प्रत्यक्षण से अंतर्बद्ध है। प्रत्यक्षणकर्त्ता किसी लक्षित व्यक्ति के व्यवहारों का पहले प्रत्यक्षण करता है। (व्यक्ति प्रत्यक्षण) तथा बाद में उन व्यवहारों के सम्भावित कारणों को ढूँढता है और एक निश्चित निर्णय करता है।
3. गुणारोपण की प्रक्रिया में लक्षित व्यक्ति के व्यवहार के पीछे छिपे कारणों का बल डाला जाता है और उसी के संदर्भ में उसके शीलगुणों एवं चित्तवृत्तियों के बारे में किसी निर्णय पर पहुँचने की कोशिश की जाती है।

एक उदाहरण – मान लिया जाये कि कोई महिला फटे–चिटे गंदे कपड़े पहने हुए आप से भूकंप में गिरे घर की मररम्मत के लिए आर्थिक सहायता मांगती है। ऐसी परिस्थिति में आप मात्र उसकी शारीरिक स्थिति तथा फटे–चिटे कपड़े के संदर्भ में ही उसके द्वारा किये गये आर्थिक सहायता की मांग का प्रत्यक्षण नहीं करते बल्कि यह भी अनुमान कर लेते है कि उसकी यह स्थिति वास्तविक गरीबी के कारण है या वह मात्र दूसरों को धोखा देकर पैसा कमाने के लिए भीख मांग रही है, आदि–आदि। किसी व्यक्ति के व्यवहारों का प्रत्यक्षण करते समय इस तरह का अनुमान करना गुणारोपण कहलाता है। अतः गुणारोपण में प्रत्यक्षकर्त्ता लक्षित व्यक्ति के व्यवहार के कारण का अनुमान लगा लेते है। इसलिए गुणारोपण को कारणता का प्रत्यक्षण के नाम से भी पुकारा जाता है।

गुणारोपण के आंतरिक तथा बाह्य कारक – गुणारोपण की प्रक्रिया को सामान्यतः दो कारकों के रूप में समझने की कोशिश की गई है –

1. **आंतरिक कारक –** इससे तात्पर्य वैसे कारको से होता है जो लक्षित व्यक्ति जिसके व्यवहारों के कारण प्रत्यक्षणकर्त्ता ढूँढ़ता है, में निहित होते है। इसमें मूल रूप से लक्षित व्यक्ति के योग्यता, शीलगुणों आदि से संबंधित कारक होते है।
2. **बाह्य कारक –** बाह्य कारक से तात्पर्य वैसे कारक से होता है जो मूलतः वातावरण के कारकों से संबंधित होते है और उसी के रूप में लक्षित व्यक्ति के व्यवहारों के काणों की व्याख्या की जाती है।

एक उदाहरण – मान लिया जाये कि किसी कर्मचारी को नौकरी से निलंबित कर दिया जाता है। इस निलंबन का कारण या तो कर्मचारी में (आंतरिक कारक) अथवा उसके बाहर (बाह्य कारक) या अंशतः दोनों में स्थित हो सकते है। आंतरिक कारकों में कर्मचारी की बुरे लतें, मानसिक अयोग्यता, काम में अरूचि आदि हो सकते है तथा बाह्य कारकों में उसके बॉस का सख्त मनोवृत्ति, कार्य का दुर्लभ स्वरूप, कार्य के वातावरण का असन्तोषजनक होना आदि हो सकता है।

4. **मानव अभिप्रेरक की माप**

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। फलतः इसका सामाजिक अभिप्रेरक अधिक महत्त्वपूर्ण है। सामाजिक अभिप्रेरक का स्वरूप (nature) भी कुछ जटिल (complex) होता है जिसके परिणामस्वरूप मनोवैज्ञानिकों ने इसका मापन (measurement) करने के लिए विशेष प्रविधि का वर्णन किया है जो निम्नांकित है–

1. **प्रेक्षण प्रविधियाँ** (Projective techniques)–प्रेक्षण विधि है जहाँ व्यक्ति को कुछ अस्पष्ट (vague) तथा असंगठित सामग्रियाँ (unstructured materials) को दिया जाता है और व्यक्ति को उनका वर्णन करना होता हैं। इस विधि को प्रेक्षण विधि इसलिए कहा जाता है कि व्यक्ति अपनी इच्छा, अभिप्रेरक (motives), अभिप्रेरकों का संघर्ष (conflict of motives) आदि का प्रेक्षण (projection) अस्पष्ट एवं असंगठित सामग्रियों के वर्णन करने में परोक्ष रूप में करता है। प्रेक्षण परीक्षण (projection) अस्पष्ट एवं असंगठित सामाग्रियों के वर्णन करने में परोक्ष रूप से करता है। प्रेक्षण परीक्षण (projection) अस्पष्ट एवं असंगठित सामग्रियों के वर्णन करने में परोक्ष रूप से करता है। प्रेक्षण परीक्षण (projective tests) तो ऐसे कई है परन्तु कथानक संप्रत्यक्षण परीक्षण (Thermatic Apperception Test or TAT) सबसे प्रमुख है जिसके द्वारा सामाजिक अभिप्रेरकों की माप की जाती है। इस परीक्षण में कुछ मानक कार्ड होते हैं जिसमे कुछ अस्पष्ट चित्र बने होते हैं और इन चित्रों के आधार पर व्यक्ति को एक कहानी (story) लिखनी होती है जिसका विश्लेषण करने के बाद उस व्यक्ति के प्रमुख अभिप्रेरकों (social motives) के बारे में पता चलता है। इस परीक्षण का प्रतिपादन मर्रे (Murray, 1938) द्वारा किया था।

2. **प्रश्नावली विधि** (Questionaire method)–सामाजिक अभिप्रेरक का मापन (measurement) प्रश्नावली विधि द्वारा भी किया जाता है। इस विधि को आविष्कारिका (inventory) विधि भी कहा जाता है। इन्वेन्ट्री या प्रश्नावली में बहुत सारे प्रश्न होते हैं जो व्यक्ति के भिन्न-भिन्न सामाजिक अभिप्रेरक (social motives) से सम्बन्धित होते हैं व्यक्ति इन प्रश्नों को पढ़ते जाता है तथा उसका उत्तर 'हाँ', 'नहीं' या 'सही-गलत' में से किसी एक को अपने लिए उपयुक्त (appropriate) समझकर बतलाया है। एडवर्ड्स (Edwards) ने इस तरह की प्रश्नावली या इन्वेन्ट्री तैयार की है जिसके सहारे 17 भिन्न-भिन्न प्रकार के सामाजिक अभिप्रेरकों (social motives) का मापन होता है। इस इन्वेन्ट्री का नाम 'एडवर्ड्स पर्सनल प्रोफेन्स सिडुल (Edwards Personal Prefernece Schedule) है।

3. **परिस्थितिजन्य परीक्षण** (Stiuational test)–सामाजिक अभिप्रेरकों को मापने का तीसरा प्रमुख तरीका परिस्थितिजन्य परीक्षण (situational tests) है। इस परीक्षण में एक खास परिस्थिति (situation) उत्पन्न किया जाता है जिसमें व्यक्ति को कुछ करना होता है और उनकी क्रियाओं (activities) के आधार पर व्यक्ति के सामाजिक अभिप्रेरक का मापन किया जाता है उदाहरणस्वरूप, यदि किसी व्यक्ति से सम्बन्ध आवश्यकता (affiliation need) का मापन करना है तो उसके सामने पहले हम एक विशेष परिस्थिति

जैसे चाहे तो वह अपने मित्र का इंतजार एक ऐसे कमरे में बैठकर कर सकता है जहाँ वह अकेला होगा या फिर एक ऐसे कमरे में बैठकर कर सकता है जहाँ पहले से 20 आदमी बैठे हैं– उत्पन्न कर देगे। यदि व्यक्ति में सम्बन्ध आवश्यकता अधिक मजबूत होगी, तो व्यक्ति 20 व्यक्तियों वाले कमरे में इंतजार करना पसंद करेगा।

परिस्थितिजन्य परीक्षण (situational test) का दोष यह है कि जब कभी भी व्यक्ति को यह पता चल जाता है कि उसके व्यवहार का निरीक्षण (observation) किया जा रहा है, तो वैसी परिस्थिति में व्यक्ति अपने वास्तविक एवं स्वाभाविक व्यवहार में परिवर्तन ला देता है। जैसे–यदि व्यक्ति को यह पता चल जाता है कि उसे निरादर इसलिए किया जा रहा है क्योंकि उसकी आकमणशीलता को मापा जाएगा, तो सम्भव है कि अपमानित होने के बावजूद भी वह आक्रमणशीलता न दिखलाए।

4. **ऐतिहासिक घटनाओं का विश्लेषण** (Analysis of historical events)–सामाजिक अभिप्रेरकों की माप ऐतिहासिक घटनाओं का विश्लेषण करके भी किया जा सकता है। इस विधि द्वारा समाज के व्यक्तियों की सामूहिक (collective) तौर पर सामाजिक अभिप्रेरक की माप ज्यादा बेहतर होती है। किसी समाज के अधिकतर व्यक्तियों की आवश्यकता उस समय के सामाचार पत्रों एवं घटनाओं द्वारा आसानी से अभिव्यक्त किया जाता है। यदि इन पत्रों में छपें खबरों एवं घटनाओं का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण (objective analysis) किया जाय, तो हम इस निष्कर्ष पर आसानी से पहुँच सकेंगे कि अधिकतर लोगों का सामाजिक अभिप्रेरक (social motive) क्या है? उदाहरणस्वरूप, यदि भारतीय समाचार पत्रों में 70 वर्ष पहले छपी खबरों एवं उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करें तो पायेंगे कि उस समय स्त्री शिक्षा की आवश्यकता (need for women education) नहीं के बराबर था। परन्तु आजकल परिस्थिति ठीक इसके विपरीत है और गत 10 साल की सामाजिक घटनाओं एवं समाचार पत्रों की खबरों का विश्लेषण करें तो हम पायेंगे कि स्त्री शिक्षा की आवश्यकता काफी महसूस की जा रही है।

5 **उपलब्धि की आवश्यकता** (Need for achievement)–उपलब्धि की आवश्यकता या जिसे उपलब्धि अभिप्रेरक (achievement motive) भी कहा जाता है, से तात्पर्य एक ऐसे अभिप्रेरक (motive) से होता है जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति अपने कार्य को इस ढंग से करता है कि उसे उसमें अधिक-से-अधिक सफलता मिल सके। मन, फर्नाल्ड व फर्नाल्ड[1] (Munn, Fernald & Fernald, 1972) ने उपलब्धि अभिप्रेरक को परिभाषित करते हुए कहा है, ''उपलब्धि अभिप्रेरक से तातपर्य श्रेष्ठता से खास स्तर प्राप्त

करने की इच्छा से होता है।'' जिन व्यक्तियों मे उपलब्धि अभिप्रेरक अधिक होता है, वे अपनी जिन्दगी में अधिक-से-अधिक उच्च स्तर की सफलता प्राप्त करने की कोशिश करता हैं। उपलब्धि अभिप्रेरक कम होता है। मनोवैज्ञानिकों ने अनेक अध्ययन कर यह दिखला दिया है कि उपलब्धि अभिप्रेरक का सम्बन्ध बचपन में माता-पिता द्वारा दिए जाने वाले स्वतंत्रता प्रशिक्षण (independence training) से काफी है। इस प्रशिक्षण से तात्पर्य बच्चों को माता-पिता द्वारा स्वतंत्र रूप से भिन्न-भिन्न तरह के कार्यों को करने देने पर जोर डालने से होता है। कुछ माता-पिता ऐसे होते हैं जो अपने बच्चों को उनके अधिकतर काम उन्हें स्वयं करने की पूर्ण स्वतंत्रता देते हैं और उसे पूरा करने में भिन्न-भिन्न तरह का प्रोत्साइन भी देते है। अतः यह कहा जा सकता है कि पहले तरह के बच्चों का स्वतंत्रता प्रशिक्षण (independence training) नहीं हो पाया जबकि दूसरे तरह के बच्चों का स्वतंत्रता प्रशिक्षण हो पाया है। जिन बच्चों को स्वतंत्रता प्रशिक्षण काफी दिया जाता है, उनमें वयस्क होने पर उपलब्धि अभिप्रेरक (achievement motive) भी अधिक होते पाया गया है।

(i) ऐसे व्यक्ति जिनमें उपलब्धि अभिप्रेरक अधिक होता है, साधारण कठिनाई (moderately difficult) वाले कार्य को करना अधिक पसंद करते हैं क्योंकि इस पर सफलता निश्चित होती है।

(ii) ऐसे व्यक्ति जिनमें उपलब्धि अभिप्रेरक अधिक होता है, वैसे कार्यों को करना अधिक पसंद करते हैं जिसके आधार पर उनकी तुलना अन्य व्यक्तियों के साथ आसानी से किया जा सके।

(iii) अधिक उपलब्धि अभिप्रेरक वाले व्यक्ति वैसे कार्यों को करना अधिक पसंद करते हैं जिनके द्वार उनके व्यक्तिगत गुणों (personal characteristics) जैसे बुद्धि आदि की अभिव्यक्ति हो।

(iv) जब अधिक उपलब्धि अभिप्रेरक वाले व्यक्ति किसी एक कार्य में सफल होते हैं तो वे अपनी इस सफलता को ध्यान में रखते हुए अपनी आकांक्षा के स्तर को धीरे-धीरे ऊँचा करते हैं–

(v) अधिक उपलब्धि अभिप्रेरक वाले व्यक्ति उन परिस्थितियों में अधिक कार्य करना पसंद करते हैं जिसके परिणाम (outocome) पर उन्हें नियंत्रण काफी होता है ताकि वे निश्चित रूप से यह समझ सके कि उन्हें सफलता मिलेगी या नहीं।

आक्रमणशीलता की आवश्यकता (Need for aggressiveness)–आक्रमणशीलता एक प्रमुख सामाजिक अभिप्रेरक (social motive) है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को शाब्दिक रूप से (verbally) या शारीरिक रूप से (physically) चोट पहुँचाने की कोशिश करता है। एटकिन्सन, एटकिन्सन तथा

हिलागार्ड' (Atkinson, Atkinson & Hilgard, 1983) ने आक्रमण अभिप्रेरक (aggression motive) को परिभाषित करते हुए कहा है, ''यह वैसा व्यवहार है जिसका उद्देश्य दूसरें को शारीरिक रूप से (physically) या शाब्दिक रूप से (verbally) चोट (injure) पहुँचाना या दूसरों की सम्पत्ति (property) को बर्बाद करना होता है।''

आक्रमणशील व्यवहार (aggressive behaviour) के कई रूप हो सकते हैं। जैसे– बस्स (Buss, 1961) के अनुसार यह शारीरिक (physical) या शाब्दिक (verbal) हो सकता है; सक्रिय (active) या निष्क्रिय (passive) हो सकता है। करीब-करीब मानव के सभी जातियों में आक्रमणशील व्यवहार का कोई-न-कोई रूप अवश्य पाया जाता है अतः आक्रमणशीलता एक तरह का सर्वव्यापक अभिप्रेरक (universal motive) है। इसी सर्वव्यापकता के कारण कुछ लोगों ने आक्रमणशीलता को जन्मजात (inborn) अभिप्रेरक माना है। फ्रायड (Freud) ने आक्रमणशीलता को एक जन्मजात अभिप्रेरक की श्रेणी में रखा है तथा उनका विचार था कि इसके द्वारा व्यक्ति में किसी चीज को बर्बाद करने या किसी व्यक्ति को चोट पहुँचाने की प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति होती है। फ्रायड ने इस प्रवृत्ति को मृत्यु मूलप्रवृत्ति (death instinct) कहा है। परन्तु आजकल के मनोवैज्ञानिकों ने फ्रायउ के इस विचार की आलोचना की है और कई प्रयोग करके यह दिखलाया है कि आक्रमणशीलता एक ऐसा अभिप्रेरक है जो व्यक्ति के वातावरण में उपस्थित कारकों (factors) द्वारा काफी प्रभावित होता है।

डोलार्ड तथा उनके सहयोगियों (Dollard et at., 1939) ने अपने प्रयोग के आधार पर यह बतलाया है कि आक्रमणशीलता जन्मजात नहीं बल्कि कुण्ठा (frustraction) से उत्पन्न होती है। व्यक्ति जब अपने लक्ष्य (goal) की प्राप्ति किसी कारण से नहीं कर पाता है, तो इससे उसमें एक विशेष प्रकार की कुण्ठा (frustration) उत्पन्न होती है जिसकी अभिव्यक्ति विभिन्न तरह के आक्रमणशील क्रियाओं (aggressive activities) द्वारा होती है। अतः व्यक्ति में आक्रमणशील क्रियाओं की उत्पत्ति कुण्ठा द्वारा होती है हालाँकि सभी तरह की कुण्ठा से आक्रमणशीलता उत्पन्न नहीं होती है। इस प्राक्कल्पना को कुण्ठा-आक्रमकता प्राक्कल्पना (frustration-aggression hyppothesis) की संज्ञा दी जाती है।

आक्रमणशीलता उत्पन्न करने के लिए कुण्ठा में दो गुणों को होना अनिवार्य है–

(i) कुण्ठा की मात्रा (amount) तीव्र (intense) हो।

(ii) कुण्ठा अनुचित (unjusstified) हो।

कुण्ठा के अलावा भी वातारण में कुद ऐसे कारक होते हैं जिनसे व्यक्ति में आक्रमणशीलता उत्पन्न होती है। ऐसे प्रमुख कारक निम्नांकित हैं–

(i) जब किसी व्यक्ति को कोई दूसरा की आज्ञा का पालन करना होता है जो उसे किसी अन्य ब्यक्ति के प्रति आक्रमणशीलता दिखलाने को कह रहा है।

(iii) बेरोन (Baron, 19770) अध्ययन के अनुसार वातावरण में उपस्थित अत्यधिक तापक्रम (high temperature), डौन्नरस्टीन तथा विलसन (Donnerstein & Wilson, 1976) के अध्ययन के अनुसार तीव्र आवाज (loud noise) तथा फ्रीडमैन (Freedman, 1975) के अध्ययन के अनुसार भीड़-भाड़ (crowding) से भी व्यक्ति में आक्रामक अभिप्रेरक (aggression motive) का जन्म होता है।

(iv) कुछ सामाजिक सीखना मनोवैज्ञानिकों (social learning psychologists) का विचार है कि व्यक्ति आक्रमणशीलता को अन्य व्यक्ति से देखकर सीखता है। गीन (Geen, 1983) ने कई अध्ययन ऐसे किये हैं जिनमें बच्चों को दूरदर्शन (television) तथा फिल्मों में आक्रमणशीलता दृश्य (aggressive scene) दिखलाया गया जिसके बाद देखा गया कि उनमें आक्रमणशीलता की मात्रा बढ़ गयी।

6. संवेग के अवस्था

संवेगात्मक व्यवहार से सम्बन्धित तीन प्रकार की प्रक्रियायें होती हैं–

(1) चेतन अनुभव

(2) व्यवहारपरक या बाह्य परिवर्तन

(3) दैहिक या आन्तरिक परिवर्तन

संवेग की अवस्था मे होने वाली उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं का वर्णन निम्न प्रकार से है–

चेतन अनुभव

संवेगात्मक व्यवहार होने के लिये या आवश्यक है कि ब्यक्ति को पहले संवेगात्मक परिस्थितियों की चेतन अनुभूति हो। उदाहरणस्वरूप हम कह सकते हैं प्राणी जब किसी भयानक परिस्थिति का सामना करता है तो उसमें भय का संवेग उत्पन्न हो जाता है। संवेग के उत्पन्न होने में स्मृति के पूर्व अनुभव, प्रत्यक्षीकरण और संवेदना इत्यादि का भी संवेग पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। किसी व्यक्ति का यदि अन्तर्दर्शन (Introspection) कराया जाये तो यह मालूम किया जा सकता है कि संवेगात्मक परिस्थिति के साथ अन्तर-क्रिया (Interaction) होने से व्यक्ति को किस प्रकार की अनुभूति होती है। जैसे यह पता

किया जा सकता है कि व्यक्ति को तनाव, सुख, दुःख, उत्तेजना अथवा गतिशीता इत्यादि से कि प्रकार की अनुभूति होगी।

संवेग की अवस्था में व्यवहारपरक या बाह्य परिवर्तन

1. **मुखाकृति में परिवर्तन**—भिन्न-भिन्न संवेगों में व्यक्तियों की मुखाकृतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। कभी चेहरा पीला पड़ जाता है, कभी लाल या तमतमाया हुआ होता है। मुँह सूखने लगता है, भृकुटियाँ तन जाती है, आँखें पथरा जाती है, आँखों में सरसता आ जाती है या मुखाकृति में शिथिलता आ जाती है, आदि मुखाकृति सम्बनी परिर्वितन भिन्न संवेगों में देखने को मिलते हैं। इस दिशा में प्रारम्भिक कार्य पिडरिट (Pidrit, 1859), जर्मन एनाटोमिस्ट द्वारा किये गये हैं। उसने मुखाकृति के विभिन्न चित्रों के द्वारा संवेगात्मक अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में एक सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया है।

   कैनर (Kanner, 1931) ने फिलके (Feleky, 1914, 1922) द्वारा विकसित कुछ चित्रों की सहायता से 409 विद्यार्थियों की मुखाकृतियों की रेटिंग्स ली। अपने प्रयोग मं उसने देखा कि 77%, 70%, 65%, 53%, 50%, 27% तथा 19% प्रयोज्यों द्वारा क्रमशः आश्चर्य, भय, हार, लज्जा, क्रोश, शंका और दया सम्बन्धी मुखाकृतियाँ पहचान ली गयी। डनलप (Dunlop, 1927) ने मुखाकृतियों के फोटोग्राफ की सहायता से अध्ययन करके निष्कर्ष निकाला कि विभिन्न संवेगात्मक अवस्थाओं में मुखाकृतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। कोलमैन (Colemen, 1949) ने मोशन पिक्चर्य की सहायता से प्रयोग करके निष्कर्ष निकाला कि विभिन्न संवेगात्मक मुखाकृतियों में आँख और मुँह के क्षेत्र में परिवर्तन होते हैं श्लासबर्ग (Shioshberg, 1941, 1952) ने मुखाकृति अभिव्यक्तियों को एक गोल स्थान में अंकित कर एक मापनी विकसित करने का प्रयास किया है। क्लाइनबर्ग (Klineberg, 1938, 1940) ने इस दिशा में प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर सांस्कृतिक अन्तरों का अध्ययन करने का प्रयास किया है। मुखाकृति में परिवर्तन के आधार पर हमेशा हम सही अनुमान नहीं लगा सकते हैं।

2. **स्वर में परिवर्तन**—संवेग की अवस्था में स्वर की मात्रा, तीव्रता और गति में परिवर्तन हो जाता है। प्रायः देखा गया है कि व्यक्ति क्रोध में तीव्र और प्रेम में मधुर स्वर में बातचीत करता है। मेरी (Merry, 1922) ने संवेगों में स्वर अभिव्यक्ति का अध्ययन फोनोग्राफ रिकार्ड्स की सहायता से किया। इसने सिनेमा कलाकरों के हँसने, रोने, आदि स्वरों का निर्णायकों को सुनाकर उनसे पूछा कि यह किस संवेग से सम्बन्धित हो सकते हैं।

3. **शारीरिक मुद्रा में परितर्वन**–दैनिक जीवन में देखा जा सेकता है कि विभिन्न, संवेगों में व्यक्ति की शारीरिक मुद्रा में भी परिवर्तन हो जाता है। लैण्डिस तथा हण्ट (Landis and Hunt, 1939) ने अपने अध्ययनों के आधार पर बताया कि शारीरिक मुद्रा और संवेग में घनिष्ठ सम्बन्ध है। उसने अपने अध्ययन में अचानक आवाज या प्रकाश का शारीरिक मुद्रा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया। उसने इस प्रकार को चकित संवेग कहा।

शारीरिक मुद्रा में माँसपेशीय तनाव (Muscular Tension) भी सम्मिलित है। वुडवर्थ (1954) के अनुसार, "The world tension is roughly equivalent to our phrase level activation"। जैकब्सन (Jacobson, 1938) के अनुसार निद्रा अवस्था में यह तनाव न्यूनतम होता है और व्यक्ति रिलैक्स्ड अनुभव करता है। व्यक्ति की क्रियाशीलता बढ़ने के साथ-साथ उसका यह माँसपेशीय तनाव भी बढ़ता जाता है। एक निश्चित सीमा तक यह तनाव व्यक्ति की गतियों के नियन्त्रण में सहायक होता है, परन्तु जब तनाव अत्यधिक हो जाता है तब विभिन्न माँसपेशियों के बीच समन्वय असन्तुलित हो जाता हैं माँसपेशीय तनाव शरीर के केवल कुछ ही अंगों में न होकर सम्पूर्ण शरीर में पाया जाता है यह हाथ, पैर, गर्दन, जबड़ों, पीठ, आदि सबसें पाया जाता है। जैकब्सन (1951) ने इस प्रकार के तनाव का अध्ययन लगभग 15 वर्ष तक किया। उसने माँसपेशीय तनाव के मापन के लिए उपकरण विकसित किया, उसकी विधि थी–इलेक्ट्रोमायग्राफिक रिकॉर्डिंग। इलेक्ट्रोमायग्राफिक रिकॉर्डिंग विधि से माँसपेशीय तनाव का अध्ययन अन्य वैज्ञानिकों (Rayan, Cottrall and Bitterman, 1950, 1951) ने भी किये हैं। इस रिकॉर्डिंग से जिस अंग के माँसपेशीय तनाव का अध्ययन करना होता है, उसमें इलेक्ट्रोड फिट करके जटिल इलेक्ट्रोनिक उपकरणों द्वारा रिकॉर्डिंग की जाती है।

संवेग की अवस्था में दैहिक या आन्तरिक परिवर्तन

संवेग की अवस्था में व्यक्ति में होने वाले दैहिक या आन्तरिक परिवर्तनों का बहुत महत्व है। इनके आधार पर संवेगों के विषय में सटीक जानकारी हो सकती है। यह परिवर्तन अग्र प्रकार से हैं–

1. **हृदय गति में परिवर्तन**–हृदय माँसपेशियों का एक खोल है जो सिकुड़ता और फैलता रहता है। सिकुड़ने को Systole तथा फैलने को Diastole कहते हैं। धमनियों (Arteries) द्वारा रक्त को सम्पूर्ण शरीर में भेजा जाता है तथा शिराओं (Veins) द्वारा शरीर के सम्पूर्ण भाग से रक्त वापस आता है। हृदय की माँसपेशियों में काण्ट्रेक्शन के समय कुछ विद्युतीय परिवर्तन भी होते हैं। इन परिवर्तनों को ECG

(Electrocardiogram) के द्वारा नोट किया जाता है। प्रयोगों में देखा गया है कि भिन्न-भिन्न संवेगों में हृदय की धड़कनों और ECG में परिवर्तन आ जाता है।

2. **रक्तचाप तथा नाड़ी में परिवर्तन**–विभिन्न संवेगों में रक्तचाप तथा नाड़ी गति परिवर्तित हो जाती है। उदाहरण के लिए टाइगरस्टड (Tigerstedt, 1926) के अनुसार एक्साइटमेंट में रक्तचाप 152 mm से 165 mm तक हो जाता है। रक्तचापका मापन Sphygmomanometer यन्त्र के द्वारा किया जाता है। बर्ग (Berg, et. al., 1941) ने अपने प्रयोगों में देखा कि यदि जोर से आवाज़ की जाय तो रक्तचाप और धड़कन एकाएक बढ़कर थोड़ी ही देर में सामान्य हो जाती हैं।

3. **त्वक्** प्रत्युत्तर में **परिवर्तन**–संवेग की अवस्था में पसीना छूटने पर त्वचा में दो प्रकार के परिवर्तन होते हैं–(i) त्वचा का विद्युतीय प्रतिरोध परिवर्तित होता है, (ii) त्वचा के ऊपकों में विद्युत प्रेरक शक्ति (Electro motive force) उत्पन्न होती है। त्वचा में होने वाले यह परिवर्तन विद्युतीय उपकरणों द्वारा मापे जा सकते हैं। संवेग की अवस्था में इस प्रकार के त्वचा से सम्बन्धित विशेष परिवर्तनों को गैल्वनिक त्वक अनुक्रिया (Galvanic skin responses or GSR) कहते हैं।

संवेगों मे सक्रियकरण स्तर का पता लगाने का सर्वश्रेष्ठ सूचक GSR है। घुणा की अवस्था में त्वचा में रोमाच और रोंगटे खड़े हो जाते हैं। प्रेम में त्वचा मं एक विशेष प्रकार की सिहरन होती है, आदि। डारो (Darrow , 1936) के अनुसार GSR की अपेक्षा रक्तचाप उच्च सक्रियकरण स्तर पर एक अच्छा माप है। मैकक्लीयरी (Mc Cleary, 1951) ने अपने एक प्रयोग में देखा कि 4 प्रयोज्यों के सामने जब आलोचनात्मक उत्तेजक शब्द प्रस्तुत किये जाते हैं तब GSR अधिक तथा साधारण शब्दों के प्रस्तुतीकरण पर GSR कम होता है।

4. **नाड़ी संस्थान में परिवर्तन**–कैनन-बार्ड के संवेग सिद्धान्त में इस बात को महत्त्व दिया गया है कि तीव्र संवेग जीव को आपातकालीन स्थिति का सामना करने के लिए उसका सक्रियकरण स्तर बढ़ा देते हैं। संवेगों में स्वतन्त्र नाड़ी संस्थान CANS का महत्त्व है साथ-ही-साथ संस्थानों का संवेगों में महत्त्व है, परन्तु ANS का पेरीफिलर डिस्ट्रीब्यूशन कार्यात्मक रूप से CNS से भिन्न अस्तित्व रखता है। हाइपोथेलेमस का संवेगों के नियन्त्रण में महत्त्वूपर्ण स्थान है। विभिन्न केन्द्रों में भिन्न-भिन्न परिवर्तन होते हैं। यदि कैनन के प्रयोगों को देखा जाय तो ज्ञात होता है। कि ANS का पैरासिन्पैथेटि भाग सामान्य मेटाबोलिक कार्यों को करता है तथा सिम्पैथेटिक भाग आपातकालीन स्थिति में क्रियाशील होता है।

स्पष्ट के क्रोध, भय, आदि जैसे तीव्र संवेगों में ANS का सिम्पैथैटिक भाग कार्य करता है। लिण्डसले (Lindsley, 1951) के अनुसार ANS के यह दो भाग एक-दूसरे से स्वतन्त्र होकर कार्य नही करते हैं बल्कि या दोनों भाग एक सन्तुलित रूप में कार्य करते हैं। ANS के दो सिस्टम्स में भी अन्तःक्रिया होती है।

5. **ग्रन्थीय परिवर्तन**–विभिन्न संवेगों में Adrenal glands, Salivary gland, Tear gland तथा में Sweat gland विभिन्न परिवर्तन देखे गये हैं। दुःख में आँसू ग्रन्थि के सक्रिय होने से व्यक्ति के आँसू निकलते देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार तीव्र भय की अवस्था में स्वैट ग्लोण्ड के क्रियाशील होने से पसीना निकलता है। एड्रीनल ग्रन्थि से जो स्राव निकलता है उसे Adrenin कहते हैं। इसकी अधिकता में यकृत (Liver) रक्त में अधिक शर्करा भेजता है फलस्वरूप व्यक्ति अधिक शक्ति का अनुभव करने लगता है। एड्रीनल ग्रन्थि के अधिक सक्रिय होने से लगभग वही परिवर्तन होते हैं जैसे कि ANS के सिम्पैथेटिक भाग के सक्रिय होने से होते हैं।

एड्रीनल ग्रन्थि से दूसरा महत्वपूर्ण पदार्थ नॉरएड्रीनलिन निकलता है। इसका मुख्य कार्य शरीर के बाहरी भाग पर चोट आदि से हुए रक्तस्त्राव को नियन्त्रित करना है। संवेगों की अवस्था में थायराइड और पिट्यूटरी ग्रन्थि (Thyriod and pituitary glands) से भी महत्वपूर्ण स्त्राव होते हैं। अतः संवेगों की अवस्था में संकटकालीन स्थितियों से ग्रन्थीय क्रियायें समायोजन करने में व्यक्ति की महत्वपूर्ण ढंग से मदद करती है।

6. **मस्तिष्क तरंगों में परिवर्तन**–संवेग का सक्रियकरण सिद्धान्त मुख्यतः मस्तिष्क तरंगों के अध्ययन पर आधारित है। इस क्षेत्र में बर्गर (Berger, 1929) द्वारा किये गये, डारो (Darrow, 1946) तथा लिण्डसले (Lindsley, 1950, 1951) के अध्ययन अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। लिण्डसले ने अपने प्रयोगों में देखा कि तीव्र संवेगों की अवस्था में हाइपोथेलेमस के सक्रियकरण के कारण व्यक्ति का सक्रियकरण स्तर बढ़ जाता है। इस अवस्था में EEG रेकार्ड सामान्य अवस्था की अपेक्षा भिन्न प्राप्त होते हैं।

7. **पाचन क्रिया में परिवर्तन**–विभिन्न संवेगों में पाचक क्रिया भी परिवर्तित होती है। दुःख संवेग की अवस्था में पाचन क्रिया मन्द हो जाती है तथा तीव्र क्रोध की अवस्था में पाचन क्रिया तीव्र हो जाती है। कैनन (Cannon, 1915) ने अपने एक प्रारम्भिक प्रयोग द्वारा यह प्रदर्शित किया कि बिल्ली के सामने कुत्ता लाने पर बिल्ली की सामान्य पाचन गति अवरूद्ध हो जाती है। इस प्रकार के अध्ययन X-Ray

Examination या मानव प्रयोज्यों को गुब्बारा निगलवाकर उनके पेट के आकुंचनों को नोट किया गया है।

8. **संवेग में अन्य परिवर्तन**—ऐक्स (Ax, 1951) ने अपने प्रयोगों में यह देखा कि तीव्र संवेगों में प्रयोज्य के हाथ और मुँह का तापमान कम हो जाता है। उसने इस प्रकार के परिणाम विशेष रूप से क्रोध संवेग में नोट किये। क्लाइटमैन (Klietman, 1950) ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों में देखा कि कुछ तीव्र संवेगों में क्रियाशीलता बढ़ने से ताप की उत्पत्ति अधिक होती है अतः शरीर का तापमान घट-बढ़ सकता है, इसलिए ऐसे संवेगों में मुँह का तापमान एक विश्वसनीय माप रह जाता है। डेम्पसी (Dempsey, 1951) तथा लिण्डसले (Lindley, 1951) ने अपने अध्ययनों में देखा कि संवेग की अवस्था में रक्त तथा शरीर के अन्य तरल पदार्थों मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। यह परिवर्तन शरीर रसायन (Body Chemistry) के नाम से जाने जाते हैं।

9. **श्वास गति में परिवर्तन**—संवेगों की अवस्था में श्वास की गति परिवर्तित हो जाती है। कभी यह तीव्र तथा कभी मन्द हो जाती है। दुःख संवेग में नाड़ी की गति धीमी देखी गयी है। कुछ भय सम्बन्धी परिस्थितियों में उपस्थित होने पर श्वास की गति कुछ सेकण्ड के लिए बन्द-सी हो जाती है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में बहुधा श्वास गति का मापन Pneumograph यन्त्र के द्वारा किया जाता है। दूसरी विधि Volume Recorder विधि है। इस विधि में प्रयोज्य द्वारा निकाली हुई हवा का मापन करके श्वास गति का मापन किया जाता है।

न्यूमोग्राफ विधि के द्वारा पेट अथवा छाती की गतियों के मापन द्वारा श्वास गति का मापन किया जाता है।

7. **संवेग की उत्पत्ति**

मूलप्रवृत्ति सिद्धान्त के समर्थकों तथा आधुनिक Etiology के अनुसार संवेग पूर्वजों से अर्जित तथा भिन्न अस्तित्व है (Emotions are interited and distinct entities)। इन विद्वानों ने यह भी माना है कि संवेग मूलप्रवृत्ति सम्बन्धी व्यवहार के लिए चालक शक्ति प्रदान करते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने संवेगों की उत्पत्ति का स्पष्टीकरण संवेगों की विकासात्मक यन्त्र रचना (Developmental Mechanism) को महत्व दिया है। हार्लो (Harlow, 1958) ने नवजात शिशु के प्रारम्भिक जीवन में इन्द्रिय बोध सम्बन्धों के आधार पर संवेगों की उत्पत्ति में अधिगम प्रक्रियाओं, विशेष रूप से प्राचीन अनुबन्धन के महत्व का

अध्ययन किया है। आइजनेक (Eysneck, 1967) ने अधिगम योग्यता और वैयक्तिक भिन्नता को महत्व दिया है।

गोल्डस्टीन (Goldstein, 1968 : Physiological Theories of Emotion) के अनुसार संवेगात्मक व्यवहार से अनेक न्यूरोलॉजिकल संरचनाएँ तथा परिभ्रमण-पथ (Circuits) सम्बन्धित होते हैं। पपेज (Papez, 1937) में संवेग सिद्धान्त प्रतिपादित किया। आपने अनुसार संवेग लिमबिक व्यवस्था (Limbic System) से सम्बन्धित होते हैं। मनुष्य में, सम्भवतः न्यूरोकार्टिकल हाइपोथेलेमिक अन्तर्सम्बन्धों का महत्व संवेगात्मक प्रक्रियाओं में उचित मालूम होता है। उदोलन संप्रत्यय (Concept of arousal) तथा संवेग के सम्बन्ध को यदि देखा जाय तो सक्रियकरण व्यवस्था को महत्व दिया गया है। डफ्फी (Duffy, 1962) ने यह सुझाव दिया है कि "Emotion falls on the extreme of a single arousal continum." कुछ आधुनिक लेखकों (Gellhorn and Loufbourrow, 1963; Eysneck, 1967; Roultenberg, 1968) ने सक्रियकरण व्यवस्था (Activating System) तथा लिमबिक व्यवस्था में अन्तर किया है। इन विद्वानों का कहना है कि यह दोनों संप्रत्यय दैहिक रूप से सम्बन्धित होते हुए भी संप्रत्ययात्मक रूप से भिन्न किये जा सकते हैं।

1. **प्राथमिक संवेगों का सिद्धान्त**

वाटसन (1926) का विचार था कि कुछ संवेग, जैसे–भय, प्रेम इत्यादि, शिशु में जन्मजात रूप से पाये जाते है और उन्हें प्राथमिक संवेग कहा जाता है। वाटसन का यह भी विचार था कि प्राथमिक संवेगों के आधार पर ही अन्य संवेगों का विकास होता है।

राबर्ट प्लूचिक (Rober Plutchik, 2001) द्वारा संवेगों की दिशा में किये गये अपने अध्ययनों के आधार पर पाया कि कुछ प्राथमिक संवेग होते हैं और इन प्राथमिक संवेगों के संयोग (Combination) से तीसरे प्रकार के संवेगों की उत्पति होती है। यह तीसरे प्रकार के संवेग अपेक्षाकृत जटिल प्रकार के होते हैं।

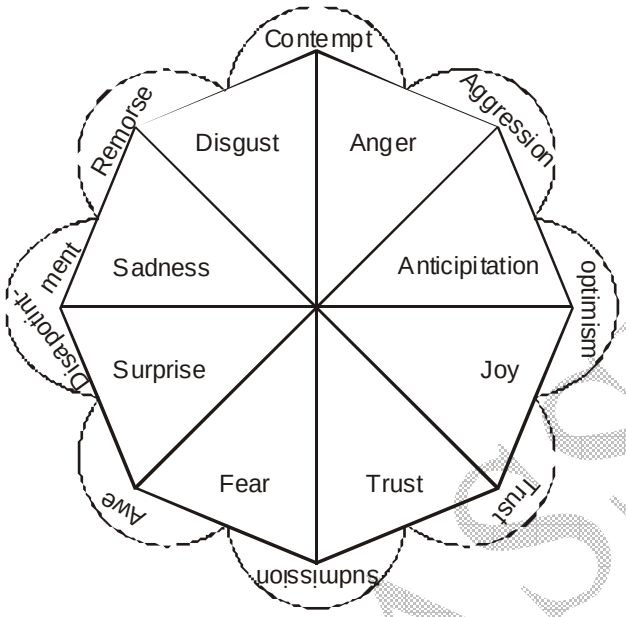

चित्र प्राथमिक और मिश्रित संवेगों का मॉडल, राबर्ट प्लूचिक, 2001

जैसा ऊपर दिये गये मॉडल से स्पष्ट है कि आठ प्रकार के प्राथमिक संवेग होते हैं, जैसे–क्रोध (Anger), प्रत्याशा (Anticipation), हर्ष (Joy), विश्वास (Trust), भय (Fear), आश्चर्य (Surprise), उदासी (Sadness) और घृणा (Disgust)। इन्हीं आठ प्रकार के समीपी संवेगों के संयोग (Combination) से तीसरा संवेग पेदा होता है।

2. विकासात्यक सिद्धान्त

इस सिद्धानत के अनुसा संवेगात्मक विकास के केवल विकासात्मक अनुक्रमों का ही महत्व होता है। यह देखा गया है कि अपरिपक्व शिशु जन्म मके समय कछ संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ प्रस्तुत करते हैं। इन बच्चों की अपेक्षा परिपक्व बच्चे भी जन्म के समय कुछ अधिक संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ प्रस्तुत करते हैं। हारलॉक (E. B. Hurlock, 1978) का इस सम्बन्ध में विचार है कि संवेगात्मक व्यवहार के प्रथम लक्षणों के रूप में नवजात शिशुओं में केवल सामान्य उत्तेजनाएँ (General Excitement) पायी जाती हैं। ये सामान्य उत्तेजनाएँ नवजात शिशुओं में केवल उस समय ही पायी जाती हैं, जब उनके सामने अधिक

शक्तिशाली और तीव्र उद्दीपक प्रस्तुत किये जाते हैं। हरलॉक का यही भी कहना है कि इन बच्चों में विशिष्ट संवेगों से सम्बन्धित स्पष्ट और निश्चित सांवेगिक प्रतिमान नहीं पहचाने जा सकते हैं। यद्यपि नवजात शिशु के केवल कुछ ही दिनों बाद दो प्रकार के प्रत्युत्तर दिखायी देते हैं। प्रथम प्रकार के प्रत्युत्तर सुखद प्रत्युत्तर हैं जो नवजात शिशु में उस समय दिखायी देते हैं जब यह स्तनपान करता है, उसे सहलाया जाता है या जब वह उपयुक्त तापक्रम के वातावरण में होता है। दूसरे प्रकार के प्रत्युत्तर बच्चों में असुखद प्रत्युत्तर (Unpleasant reaction) उस समय होते हैं जब बच्चे की त्वचा से कोई अधिक ठण्डी या गर्म चीज का स्पर्श कराया जाये, अचानक तेज आवाज की जाये अथवा बच्चे की स्थिति बेढ़ंगे तरीके से बदली जाये, इस प्रकार के उद्दीपकों से बच्च में मास (Mass) अनुक्रियाएँ दिखायी देती है और बच्चा रोने लग जाता है।

यह देखा गया है कि यही सामान्य उत्तेजनायें (General excitements) परिपक्वता एवं अधिगम के आधार पर अथवा अनुभव एवं योग्यता के आधार पर विशिष्ट रूप धारण करके संवेगों में परिवर्तित होते जाते हैं।

संवेग में नाड़ी संस्थान की भूमिका

1. स्वतन्त्र नाड़ी संस्थान

संवेगात्मक उदोलन की स्थिति में स्वतन्त्र नाड़ी संस्थान में पायी जाने वाली अनुकम्पित नाड़ियाँ (Sympathetic nerves) और परानुकम्पित नाड़ियाँ (Parasymapthetic nerves) क्रियाशील होकर आपस में समन्वित (Coordinated) होकर कार्य करती हैं और शारीरिक अंगों को महत्वपूर्ण प्रकार से समायोजित करती है।

संवेग की अवस्था में अनुकम्पित तन्त्र (Sympathetic system) व्यक्ति के शरीर में निम्नलिखित कार्य करता है–

1. आँखों की पुतलियाँ फैल जाती हैं।
2. हृदय की गति और रक्तचाप बढ़ जाता है।
3. आँतों की क्रिया तथा गैस्ट्रिक क्रिया अवरूद्ध हो जाती है।

4. रक्त में एड्रीनल ग्रन्थि से अधिक स्त्राव होता है जिससे यकृत से ब्लड शुगर की अधिक मात्रा निकलती है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति की क्रियाशीलता बढ़ जाती है।
5. श्वसन क्रिया में वृद्धि हो जाती है।
6. व्यक्ति की त्वचा के रोम खड़े हो जाते हैं।
7. लार का स्त्राव नहीं होता है और पसीने की ग्रन्थि क्रियाशील हो जाती है।

परानुकम्पित भाग (Parasympathetic division) द्वारा व्यक्ति के शरीर में ऊर्जा का संरक्षण (Conservation) किया जाता है। परानुकम्पित तन्त्र व्यक्ति को उत्तेजित ने करके सामान्य करने की दिशा में कार्य करता है।

2. मस्तिष्क की भूमिका

संवेग की अवस्था में मस्तिष्कीय केन्द्रों (Brain centres) की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

संवेग की अवस्था में कार्टेक्स के कार्य

सामान्य और तीव्र संवेग की स्थिति में मस्तिष्क की विद्युतीय क्रियाओं (Electrical activity) का मापन करके महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। संवेग की अवस्था में कार्टेक्स अग्र प्रकार की क्रियायें करता है–

1. संवेगात्मक उद्दीपक की तीव्रता के आधार पर संवेगात्मक व्यवहार करना।
2. व्यक्ति द्वारा प्राप्त परिपक्वता और अधिगम के आधार पर संवेगात्मक व्यवहार करना।
3. व्यक्ति के उदोलन को निश्चित करने का कार्य।

संगेव की अवस्था में सबकार्टेक्स के कार्य

संवेग की अवस्था में व्यक्ति के संवेगात्मक व्यवहार को निर्देशित करने में थैलेमस और हाइपोथैलेमस मुख्य हैं।

थैलेम्स–थैलेम्स के एक मुख्य मांग Dorsomedial nucleus को विद्युतीय उद्दीपन देने पर भय की अनुक्रिया प्राप्त होती है। इसी प्रकार के एक अध्ययन (Delgado, 1955) में देखा गया कि Post eroventral nucleus को विद्युतीय उद्दीपन देने से आक्रामकता (Aggression), चिन्ता, कष्ट आदि अनुक्रियायें मिलीं। मार्गन (morgen, 1968) द्वारा थैलेमस के Anterior nucleus पर किये गये अपने अध्ययनों में यह पाया गया कि यह भय और उसके व्यवहारों पर नियन्त्रण करता है।

हाइपोथैलेमस (Hypothalamus)–हाइपोथैलेमस के अग्रभग (Anterior hypothalamus) का सम्बन्ध स्वतन्त्र नाड़ी संस्थान के परानुकम्पित तन्त्र (Parasymapthetic system) से होता है तथा हाइपोथैलेमस के पृष्ठ भाग (Posterior hypothalamus) का सम्बन्ध अनुकम्पित तन्त्र (Sympathetic system) से होता है। हाइपोथैलेमस को संवेगों का केन्द्र माना जाता है। हाइपोथैलेमस विभिन्न संवेगों की अवस्था में व्यक्ति के संवेगात्मक व्यवहारों को निश्चित करता है। हाइपोथैलेमस विभिन्न संवेगों की अवस्था में व्यक्ति के संवेगात्मक व्यवहारों को निश्चित करता है। हाइपोथैलेमस में स्वतन्त्र प्रक्रियाओं (Autonomous processess) को संगठित व नियन्त्रित करने वाले केन्द्र होते हैं। यह उत्तेजक और अवरोधक दोनों प्रकार से स्वतन्त्र नाड़ी संस्थान को नियन्त्रित करता है।

8. प्रतिबल के लक्षण

व्यक्ति जो भी कार्य करता है उसे कुछ न कुछ तनाव का अनुभव होता है।कभी यह कम और कभी यह ज्यादा होता है। प्रतिबल की स्थिति होने पर यह व्यक्ति की मानसिक क्षमताओं या शारीरिक क्षमताओं पर निर्भर करता है कि व्यक्ति प्रतिबल का अनुभव करेगा अथवा नही। प्रतिबल के विषय मे यह भी महत्वपूर्ण होता है कि व्यक्ति धनात्मक अथवा ऋणात्मक घटनाओं या समस्याओं को किस दृष्टिकोण से देखता है और उनको कितना महत्व देता है। यदि वह महत्व नही देता है या कम देता है तो प्रतिबल के प्रभाव से बच सकता है या बहुत कम प्रभावित होता है। यदि व्यक्ति घटनाओं का सामना करने में सक्षम है तो उसमें प्रतिबल उत्पन्न नहीं होगा।

प्रतिबल की दिशा में हुए मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में यह देखा गया है कि जब व्यक्ति प्रतिबल का अनुभव करता है उसका समायोजन खराब हो जाता है, उत्तरदायित्व में कमी आ जाती है और वह शारीरिक परेशानियों का अनुभव करने लगता है। डॉक्टर और डॉक्टर द्वारा इस दिशा में किये गये अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों में देखा गया कि प्रतिबल की उपस्थिति में व्यक्ति में मुख्यतः व्यवहार में शारीरिक रूप से तथा संवेगात्मक रूप में परिवर्तन हो जाते है। प्रतिबल की स्थिति में उत्पन्न होने वाले संकेत चिन्ह या लक्षणों का उल्लेख भी अपने अध्ययनों में उन्होंने किया।

Behavioural Signs	1. Poor Judgement 2. Avoidance of responsibilities and relationship 3. Self neglect 4. Self destructive behaviour	दुर्बल निर्णय क्षमता उत्तरदायित्व और सम्बन्धों से बचना स्व–अपेक्षा स्व–पीडक व्यवहार
Emotional Signs	1. Mental fatigue 2. Anxiety 3. Irritability 4. Apathy	मानसिक थकान चिन्ता चिड़चिड़ापन उदासीनता
Physical Signs	1. Physical ailments and complaints 2. Over use of medicines 3. Frequent illness 4. Excessive worry about illness 5. Exhaustion	शारीरिक अस्वस्थता और परेशानी दवाओं का अधिक प्रयोग जल्दी–जल्दी बीमार पड़ना बीमारी की अत्यधिक चिन्ता समापन

तालिका – प्रतिबल के संकेत चिन्ह या लक्षण

प्रतिबल में मनोवैज्ञानिक और दैहिक परिवर्तन –

जब व्यक्ति प्रतिबल ग्रस्त होता है तब उसमें मुख्यतः दो प्रकार के परिवर्तन या प्रतिक्रियाएं होती हैं। यह दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाएं त्रुटिपूर्ण प्रकार की होती है। इनका वर्णन निम्न प्रकार से है –

(I) मनोवैज्ञानिक परिवर्तन : इन मानसिक प्रतिक्रियाओं में विघटन या क्षुब्धता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। मनोवैज्ञानिक परिवर्तन दो प्रकार के होते है –

1. **संज्ञानात्मक विकृति –** प्रतिबल की उपस्थिति में व्यक्ति का संज्ञान विकृत हो जाता है, उसमें एकाग्रता की क्षमता कम हो जाती है, वह तार्किक रूप से चिन्तन करने में अधिक कठिनाई का अनुभव करता है चिन्तित दिखाई देता है। उद्दीपकों का प्रत्यक्षीकरण सामान्य ढंग से नहीं हो पाता है। उसकी स्मरण शक्ति दुर्बल हो जाती है।
2. **संवेगात्मक अनुक्रियाएँ –** प्रतिबल की अवस्था में व्यक्ति की संवेगात्मक अनुक्रियाएं जैसे – चिन्ता, क्रोध, आक्रामकता आदि सामान्य नहीं होती है। कुछ संवेगात्मक अनुक्रियाएं निम्नलिखित प्रकार से है –

(i) चिन्ता – प्रतिबल की अवस्था में पहली संवेगात्मक अवस्था चिन्ता के रूप में होती है। चिन्ता की अवस्था में व्यक्ति में भय, आशंका और परेशानी मुख्य रूप से दिखाई देती है। प्रतिबल की अवस्था में चिन्ता मनस्तापी चिन्ता होती है।

(ii) **क्रोध और आक्रामकता –** जब व्यक्ति प्रतिबलग्रस्त होता है तो उसमें क्रोध की मात्रा अधिक होती है। इस कारण वह आक्रामक व्यवहावर करता है। आक्रामकता व्यक्ति की शुब्धता के कारण भी हो सकती है।

(iii) **भावशून्यता और विषाद –** प्रतिबल की उपस्थिति में जब व्यक्ति में क्रोध और आक्रामकता उत्पन्न नहीं होती है तब उसके विपरीत उसमें संवेगात्मक अनुक्रिया भावशून्यता और विषाद उत्पन्न हो जाता है। जब यह परिस्थिति लगातार बनी रहती है, इसका समाधान नहीं हो पता है तब भावशून्यता आगे चलकर विषादी प्रवृत्ति में परिवर्तित हो जाती है।

(II) **दैहिक परिवर्तन –** प्रतिबलग्रस्त व्यक्ति के दैहिक परिवर्ततनों में पहले व्यक्ति की हृदय गति असामान्य हो जाती है, श्वांस गति में परिवर्तन हो जाता है और उसको पाचन सम्बन्धी परेशानियाँ होने लगती है। प्रतिबल की अवस्था में निम्नलिखित दो प्रकार की दैहिक प्रतिक्रियाएँ व्यक्ति में दिखाई देती है –

1. **आपातकालीन अनुक्रियाएँ –** जब व्यक्ति प्रतिबल से ग्रस्त होता है और इस अवस्था में व्यक्ति के शरीर में जो अनुक्रियाएँ होती है उन्हें आपातकालीन अनुक्रियाएँ कहते है। प्रतिबल की अवस्था में व्यक्ति का यकृत अधिक मात्रा में ग्लूकोज का उत्सर्जन करता है, अधिक ग्लूकोज के कारण मांसपेशियों को अधिक शक्ति प्राप्त होती है। इस अवस्था में हृदय की गति, श्वांस की गति रक्तचाप (B.P.) बढ़ जाता है। चर्बी और प्रोटीन भी आवश्यकतानुसार ग्लूकोज मे बदल जाते है, जिससे व्यक्ति को अतिरिक्त ऊर्जा प्राप्त होती है। व्यक्ति के लार में श्लेष्मा की मात्रा कम हो जाती है जिससे कि उसे सांस लेने में कोई रूकावट न हो।

2. **सामान्य अनूकूलन संलक्षण –** सेली ने सामान्य अनुकूलन संलक्षण सम्प्रत्यय का प्रतिपादन किया। उनका मानना है कि जिस भी कारण से प्रतिबल उत्पन्न हो परन्तु प्रतिबल के प्रति प्रतिक्रियाओं में कुछ न कुछ समानता पायी जाती है। इस सम्प्रत्यय को ही (GAS) का नाम दिया गया। इसमें निम्नलिखित तीन अवस्थाएँ पायी जाती है –

(i) **चेतावनी प्रतिक्रिया की अवस्था** : व्यक्ति में यह अवस्था प्रतिबल प्रभाव से उत्पन्न होती है। प्रतिबल के फलस्वरूप सबसे पहले होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को चेतावनी प्रतिक्रिया कहते है। सैथस ने इस अवस्था को संकट की सूचना का नाम दिया है। इस अवस्था में प्रतिबलक के प्रति अनुक्रिया करने के लिये व्यक्ति का अनुकम्पी नाड़ी संस्थान क्रियाशील हो जाता है। इस अवस्था में शरीर का तापक्रम बढ़

जाता है, श्वांस गति तेज हो जाती है, रक्तचाप (B.P.) बढ़ जाता है मांसपेशियों में तनाव बढ़ जाता है इत्यादि। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति में प्रतिबल परिस्थिति से निपटने की क्षमता बढ़ने लगती है।

(ii) **प्रतिरोध की अवस्था** : जब पहली अवस्था से प्रतिबल नियंत्रित नहीं होता है तब व्यक्ति इस अवस्था में प्रवेश करता है। इस अवस्था में उसे शरीर से ऐसे हारमोन्स निकलते है जिससे व्यक्ति प्रतिबल परिस्थिति में अपना बचाव करता है। पिट्यूटी ग्रन्थि से एक विशेष हारमोन रक्त में स्त्रावित किया जाता है जिसे ACTH (Adrenocorticotropic) कहते हैं। इसी प्रकार एड्रीनल ग्रन्थि के कार्टेक्स से कार्टीसोल नामक हारमोन स्त्रावित होकर रक्त में मिलता है। इन हारमोन्स के कारण प्रतिबल परिस्थिति का सामना करने की व्यक्ति की क्षमता बढ़ती है।

(iii) **समापन की अवस्था** : जब व्यक्ति द्वितीय अवस्था में भी प्रतिबल पर नियन्त्रण स्थापित नही कर पाता है तो वह समापन की अवस्था में पहुँच जाता है। इस अवस्था में भी प्रतिबल जारी रहने पर व्यक्ति की शारीरिक क्षमताएँ घटने लगती है। सेली द्वारा इसको अनुकूलन रोग कहा गया। इस अवस्था में पीड़ित व्यक्ति की आँतों में घाव हो सकते है, उसका रक्तचाप गम्भीर रूप से बढ़ सकता है, मधुमेह, हृदय रोग, एलर्जी, दमा होने के साथ–साथ कैन्सर होने की सम्भावना बढ़ जाती है। प्रतिबल का खतरनाक रूप इससे स्पष्ट होता है।

9. प्रतिबल के प्रभाव

प्रतिबल का प्रभाव व्यक्ति पर नकारात्मक प्रकार का पड़ता है। यह प्रभाव कई रूपों में हो सकता है। कॉफर और एपली ने प्रतिबल की दिशा में किये अपने मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार कहा कि, प्रतिबल के परिणामस्वरूप व्यक्ति अपनी अखण्डता को खतरे में पाता है और अपनी सभी ऊर्जा को उन्नत करके अपनी सुरक्षा करता है।

सामान्यतः प्रतिबल को प्रतिकूल मनोवेज्ञानिक दशा माना जाता है। प्रतिबल की उपस्थिति में व्यक्ति विशेष प्रकार की अनुक्रियाएं जैसे – चिन्ता, क्रोध, आक्रामकता, नींद न आना, रक्तचाप में वृद्धि जैसी मनोवैज्ञानिक अनुक्रियाएं करता है। व्यक्ति का संज्ञान विकृत हो जाता है, एकाग्रता कम हो जाती है और विषाद उत्पन्न हो जाता है।

जब प्रतिबल की समस्या व्यक्ति में लम्बे समय तक रहती है तो उसमें गम्भीर प्रकार की विकृतियां उत्पन्न हो सकती है। डेविसन और नीले ने अपने अध्ययनों में पाया कि प्रतिबल के फलस्वरूप व्यक्ति में पाचन सम्बन्धी रोग, कोलाइटिस तथा मधुमेह आदि होने की प्रबल सम्भावना रहती है। यह देखा गया है कि उस दौरान मस्तिष्क आघात या हृदय आघात भी होने की अधिक सम्भावना रहती है। कुछ मनोवैज्ञानिकों में यह पाया गया कि प्रतिबल के कारण व्यक्ति स्नायुविकृति से भी ग्रस्त हो सकता है और यदि व्यक्ति में स्नायुविकृति उत्पन्न हो गई तो वह प्रतिबल का भी अनुभव अधिक करेगा और वह अपनी बीमारी से लगातार परेशान रहेगा।

अतः यह आवश्यक है कि प्रतिबल से बचाव या इसका प्रबन्धन किया जाये अन्यथा व्यक्ति अनेक समस्याओं से पीड़ित होगा।

VPM CLASSES